सुप्रीम कोर्ट ने चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति में गड़बड़ी को सुधारा

योगेन्द्र यादव

संविधान लागू होने के 73 साल बाद आखिर संवैधानिक व्यवस्था की एक गंभीर विसंगति को पिछले सप्ताह सुप्रीम कोर्ट ने ठीक किया। एक ऐतिहासिक आदेश में सुप्रीम कोर्ट के पांच जजों की खंडपीठ ने सर्वसम्मति से चुनाव आयुक्त और अन्य चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति की प्रक्रिया को बदल दिया है। अब ये नियुक्तियां सरकार के हाथ में ही नहीं रहेंगी। ये नियुक्तियां एक तीन सदस्यीय समिति की सिफारिश पर की जाएंगी जिसमें प्रधानमंत्री और लोकसभा में विपक्ष के नेता के अलावा सुप्रीमकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश होंगे।

कोर्ट ने यह भी स्पष्ट किया है कि यह व्यवस्था तब तक चलेगी जब तक संसद इस बारे में एक स्थायी कानूनी व्यवस्था नहीं बना देती। इस विसंगति का अहसास संविधान बनाते समय ही संविधान सभा के सदस्यों को हो गया था। संविधान सभा इस राय पर एकमत थी कि चुनाव आयोग एक स्वतंत्र संस्थान रहे और उसे सरकार के दबाव से मुक्त रखा जाए। लेकिन वह मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य आयुक्तों की नियुक्ति की प्रक्रिया पर सहमत नहीं हो पाई।

अंतत: यह तय हुआ कि संविधान में लिख दिया जाए कि नियुक्ति की स्वतंत्र प्रक्रिया बनाने के लिए संसद एक कानून बनाएगी। इसे संविधान के अनुच्छेद 324 (2) में इस तरह दर्ज किया गया, ''निर्वाचन आयोग में मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य आयुक्तों यदि कोई हों, जिन्हें राष्ट्रपति समय-समय पर नियत करें, की नियुक्ति संसद द्वारा बनाई गई विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी।''

विसंगति यूं पैदा हुई कि संसद ने इस बारे में वह कानून कभी बनाया ही नहीं। ऐसी किसी स्वतंत्र व्यवस्था के अभाव में संविधान की इबारत का मतलब यह हो गया कि यह नियुक्ति राष्ट्रपति करेंगे। इसका मतलब हमारी संसदीय व्यवस्था में यह हुआ कि यह फैसला सरकार करेगी। पिछले सात दशक से मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य आयुक्तों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की मर्जी के मुताबिक होती रही थी। विडंबना यह है कि इस बीच चुनाव आयोग से कम संवैधानिक शक्ति वाली अनेक संस्थाओं में नियुक्ति की प्रक्रिया में सुधार किया गया।

लोकपाल और सूचना आयोग में नियुक्ति की व्यवस्था में सरकार के साथ विपक्ष के नेता और न्यायपालिका को जोड़ा गया। यहां तक कि सी.बी.आई. के निदेशक और प्रैस काऊंसिल के अध्यक्ष की नियुक्ति में भी सरकार और विपक्ष दोनों की भूमिका को संतुलित किया गया। लेकिन चुनाव आयोग जैसी निर्णायक संस्था में नियुक्ति सत्ताधारी पार्टी की मनमर्जी से चलती रही। शुरू में सरकारों ने इस पद की गरिमा और लोकतांत्रिक मर्यादा का लिहाज रखते हुए निष्पक्ष व्यक्तियों को नियुक्त किया।

लेकिन बीच-बीच में सरकार के दरबारी अफसरों की चुनाव आयोग में नियुक्ति की शिकायत मिलती रही। मोदी सरकार ने रही-सही मर्यादा को ताक पर रखते हुए अनेक एक तरफा नियुक्तियां कीं जिससे चुनाव आयोग की निष्पक्षता संदेह के घेरे में आ गई। पिछले कुछ वर्षों में चुनाव आयोग ने भी अनेकों ऐसे फैसले दिए जिससे इस संवैधानिक संस्था पर प्रश्नचिन्ह उठने लगे। सार्वजनिक बहस में चुनाव आयोग पर भाजपा का कार्यालय होने तक के आरोप लगे।

दुनिया में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव की मिसाल भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए यह नि:संदेह एक शर्मनाक अध्याय था। इस विसंगति को बार-बार चुनाव सुधार की रिपोर्ट और सिफारिशों में रेखांकित किया गया। सत्तर के दशक में बनी तारकुंडे समिति से लेकर भारत सरकार द्वारा नियुक्त दिनेश गोस्वामी समिति और विधि आयोग की रिपोर्ट में भी अनेकों बार यह सिफारिश की गई कि चुनाव आयोग के संवैधानिक पदों पर नियुक्ति एक निष्पक्ष व्यवस्था से की जाए। लेकिन सभी सत्ताधारी दलों और सरकारों ने आंखें मूंदे रखीं और संविधान के निर्देश का उल्लंघन चलता रहा।

अंतत: लोकतांत्रिक सुधार के लिए प्रतिबद्ध स्वतंत्र संगठन एसोसिएशन फॉर डैमोक्रेटिक रिफॉर्म्स ने सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाया और उनकी तरफ से प्रख्यात वकील प्रशांत भूषण ने कोर्ट में मोर्चा संभाला। कुछ अन्य व्यक्ति और संगठन भी इस मुकद्दमे में शामिल थे। सरकार ने अपने वरिष्ठतम वकीलों को खड़ा कर कोर्ट में एड़ी-चोटी का जोर लगाया कि सुप्रीम कोर्ट इस मामले में दखल न दे। बाल की खाल उधेड़ते हुए यह कहा गया कि संविधान के अनुच्छेद 324 में संसद को कानून बनाने का निर्देश है ही नहीं।

यह दलील दी गई कि सुप्रीम कोर्ट का काम कानून बनाना नहीं है। अगर संसद ने कानून नहीं बनाया तो इस कमी को सुप्रीम कोर्ट नहीं पूरा कर सकता। कोर्ट के सामने यह डर भी दिखाया गया कि अगर इस मामले में कोर्ट ने दखल दिया तो न जाने कौन-कौन से पिटारे और खुल जाएंगे। सरकार इतनी घबराई हुई थी कि सुप्रीम कोर्ट में इस मुकद्दमे की सुनवाई के दौरान ही सरकार ने चुनाव आयोग में एक विचित्र नियुक्ति की। जैसे ही प्रशांत भूषण ने कोर्ट में अनुरोध किया कि इस सुनवाई के दौरान चुनाव आयोग में कोई नई नियुक्ति न की जाए, उसके अगले ही दिन सरकार ने राष्ट्रपति के हाथों श्री अरुण गोयल को चुनाव आयुक्त बनाने का फरमान जारी कर दिया।

जब कोर्ट ने इस नियुक्ति की फाइल मंगावई तो खुलासा हुआ कि 24 घंटे के भीतर ही विधि मंत्रालय ने नियुक्ति का पैनल बना दिया, प्रधानमंत्री ने उनमें से एक व्यक्ति का चयन कर लिया, उस व्यक्ति ने आई.ए.एस. से इस्तीफा दे दिया, उस इस्तीफे को मंजूर कर लिया गया और उनकी नई नियुक्ति का आदेश जारी कर दिया गया। चुनाव आयुक्त की नियुक्ति की प्रक्रिया की सारी खामियां इस एक उदाहरण में ही स्पष्ट हो गईं।

जस्टिस के.एम. जोसेफ की अध्यक्षता वाली इस खंडपीठ (न्यायमूर्ति के.एम. जोसेफ, अजय रस्तोगी, अनिरुद्ध बोस, ऋषिकेश राय और सी.टी. रवि कुमार) ने सर्वसम्मति से सरकार द्वारा पेश किए गए सभी कुतर्कों को खारिज कर दिया। 378 पन्नों के दो सहमति के फैसलों में देश के सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान सभा की बहस, संविधान की शब्दावली और इससे संबंधित सुप्रीम कोर्ट के हर पुराने फैसले की विषद विवेचना करते हुए हर संदेह का निष्पादन किया है।

73 साल बाद संविधान सभा की राय का मान रखते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि चुनाव आयोग जैसी महत्वपूर्ण संवैधानिक संस्था को सरकार के अंगूठे तले रखना संविधान की आत्मा और लोकतांत्रिक व्यवस्था का उल्लंघन है। लोकतंत्र को आसन्न खतरों के समय सुप्रीम कोर्ट का यह फैसला अंधकार में एक प्रकाश की किरण लेकर आया है।

उम्मीद करनी चाहिए कि सरकार संसद में आनन-फानन में कोई कानून लाकर इस फैसले के असर को निरस्त करने की बजाय इसकी भावना का सम्मान करेगी। आशा यह भी करनी चाहिए कि चुनाव आयोग स्वयं इस फैसले में आयोग की निष्पक्षता की अपरिहार्यता संबंधी टिप्पणियों से सबक लेते हुए अपनी संवैधानिक मर्यादा के अनुरूप आचरण करेगा।